TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY

OU_176390

UNIVERSAL LIBRARY

OUP--68—11-1-68—2,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 R22B Accession No. H358

Author रसाल, रमाशंकर शुक्ल.

Title ओजराज. 1950.

This book should be returned on or before the date last marked below.

भोजराज

(खंड-काव्य)

लेखक
श्री डा० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल'
प्रयाग-विश्वविद्यालय

प्रकाशक
प्रतिभा—मंडल
प्रयाग

१९५०

कागज़ का आकार—वाइट प्रिंटिंग

„ „ वज़न—२४ पौंड

„ „ नाप—२० x ३०

मूल्य १)

P G

मुद्रक—शिवनन्दन शर्मा, हिन्दी प्रेस, प्रयाग

वक्तव्य

आनन्द की खोज में मनुष्य ने विविध विद्याओं और कमनीय कलाओं के साथ ही उस काव्य-कला की भी खोज की है, जिससे मानव-मन को एक विशेष अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। आनन्द ही काव्य का उद्देश्य अथवा प्रयोजन है। यही आनन्द-रस काव्य का प्राण है। काव्य किसी भी रूप में क्यों न हो, वह बिना आनन्द रस के काव्य नहीं रहता। काव्य का शरीर तो बनता है भाषा से, किन्तु वह सजीव होता है इसी आनन्ददायक रस से। इस के साथ ही जिस प्रकार मानव-शरीर में चेतन शक्ति रहती है उसी प्रकार काव्य के शरीर में भी विचार अथवा भाव की शक्ति रहती है अर्थात् काव्य में रसात्मकता के साथ ही ज्ञान-गम्यता अथवा भाव-गंभीरता भी होनी चाहिए।

काव्य का सम्बन्ध यदि रह सकता और हो सकता है तो प्रकृति से। काव्य में या तो वाह्य प्रकृति का चित्रण रहेगा अथवा मानव-प्रकृति का। इन्हीं दोनों में सारे विश्व की सत्ता है, इन दोनों के साथ ही काव्य उस महान आत्मा से भी सम्बन्ध रखता है, जिसकी महत्ता उक्त दोनों प्रकार की प्रकृतियों से व्यक्त होती है। काव्य में इन तीनों का समावेश कवि अपनी प्रशस्त प्रतिभा और कल्पना-कुशलता के द्वारा किया करता है।

कहना चाहिए कि काव्य मानव-प्रकृति-सम्बन्धी होकर मानव जीवन से सम्बन्ध रखता है और उसी का चित्रण उसमें किसी न किसी रूप में किया जाता है।

कवि जहाँ कहीं भी प्रकृति का भी चित्रण करता है वहीं उस चित्रण में प्रकृति के साथ मानव-सम्बन्ध और उस पर पड़ने वाले प्रकृति के प्रभाव का पूरा आभास अथवा प्रतिबिंब रहा करता है। इसी प्रकार जब कवि लोकेतर अदृष्ट सत्ता का अपने काव्य में चित्र खींचता है तब भी वास्तव में अदृष्ट-सम्बन्धी उसकी भावानुभूतियाँ ही प्रधानता प्राप्त कर उसमें व्यक्त होती हैं। इसलिये यह कहना ही ठीक है कि काव्य वस्तुतः मानव-जीवन का चारु-चित्र है, और ऐसा विचित्र चित्र है कि उससे मानव-मन मुग्ध होकर आनन्दानुभूति प्राप्त करता है।

मानव-जीवन का चित्रण करने में कवि मुख्यतः तीन ही रूपों से कार्य कर सकता है। या तो वह किसी मनुष्य विशेष को चुनकर उसके सारे जीवन का रुचिर रंगों से रंजित एक सुन्दर चित्र ऐसा अंकित करेगा जिसमें जीवन का पूरा विस्तार भी आ जाये और वह ऐसा भी रहे कि किसी भी प्रकार उससे किसी का मन ऊब भी न सके—अर्थात् उस चित्र में जीवन के चुने हुये प्रभाव-पूर्ण आकर्षक अंग ही अच्छे रंग में दिखलाये जायेंगे। एक समस्त जीवन के ऐसे चारु-चित्रांकन को महाकाव्य कहा जाता है।

कहना चाहिए कि महाकाव्य किसी प्रशस्त व्यक्ति के सुन्दर जीवन की रुचिर और रोचक कथा का विन्यास है। इसके साथ ही महाकाव्य में और भी कतिपय विशेषतायें मानी गयी हैं, जैसे उसमें वर्णित की गई जीवन-कथा सर्गों में विभाजित हो और प्रत्येक सर्ग में किसी एक ही छंद का आद्योपांत निर्वाह हो। एक अथवा दो सर्ग उसमें विविध छंदों और काव्य-कौशलों से युक्त हों। यथास्थान उसमें ऋतुओं का वर्णन भी प्राकृतिक दृश्य के चित्रांकन के साथ किया गया हो, तथा चन्द्रोदय और सूर्योदय

का भी कौशल-पूर्ण वर्णन हो। महाकाव्य का नायक अथवा प्रधान पात्र, जिसका जीवन-चरित्र चित्रित किया जा रहा है, देव-श्रेणी अथवा देवोपम राज-पुरुष होता हुआ धीरोदात्त और सब शुभ गुणालंकृत रक्खा जाये। नायिका भी उसकी इसी प्रकार सभी सद्गुणों से अलंकृत हो। इनसे अतिरिक्त और भी कुछ थोड़े से लक्षण महाकाव्य के काव्य-शास्त्रों में कहे गये हैं।

इन सब लक्षणों से युक्त संस्कृत में 'माघ', 'किरात', 'नैषध, 'रघुवंश' जैसे कई महाकाव्य हैं। हिन्दी भाषा के साहित्य में महाकाव्य के ये सब शास्त्रीय लक्षण किसी भी काव्य में नहीं पाये जाते, किन्तु महाकाव्य के सारतत्त्व को लेकर प्रमुख लक्षणों के साथ प्रशस्त कवियों ने कुछ काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं। महाकवि तुलसीदास का 'रामचरितमानस' और महाकवि केशवदास की 'रामचन्द्रिका' हिन्दी-संसारमें प्रसिद्ध और ज्वलन्त उदाहरण हैं। यद्यपि इन दोनों ग्रन्थों पर महाकाव्य के सभी शास्त्रीय लक्षण सर्वथा चरितार्थ नहीं होते। वर्तमान समय में पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'प्रिय प्रवास' और मैथिली शरण गुप्त के 'साकेत' जैसे कुछ खड़ी बोली के काव्य महाकाव्य कहे तो गये हैं किन्तु सम्भवतः इसी विचार से कि उनमें काव्य की सारता किसी न किसी रूप में देखी जाती है और महाकाव्य के कुछ लक्षण भी पाये जाते हैं। किन्तु यदि प्राचीन परिभाषा के आधार पर कहा जाये तो हिन्दी में अब तक कोई भी सर्वांग-पूर्ण, सुंदर सराहनीय वैसा महाकाव्य नहीं जैसे संस्कृत-साहित्य में प्राप्त होते हैं

कवि के लिये यही आवश्यक नहीं कि वह किसी संपूर्ण जीवन को ही चित्रित करे। उसे स्वतंत्रता है कि वह जीवन के किसी भी एक खंड को लेकर उसका ऐसा चित्रण करे कि उस चित्र के देखने से पूर्ण संतोष हो

जाये और न तो इस बात की ही कोई विशेष आवश्यकता रहे कि उस चित्र के विषय में अधिक जानने के लिये प्रयत्न करना पड़े और न इस बात ही की आवश्यकता रहे कि उस चरित्र के अतिरिक्त उस चित्र से सम्बन्ध रखने वाले जीवन का और कोई विशेष परिचय प्राप्त किया जाये।

तात्पर्य यह है कि कवि को किसी जीवन-कथा से ऐसा अंश चुनना चाहिये जो अपने में एक प्रकार से सर्वथा पूर्ण हो और जिसमें रोचकता तथा भावानुभूति की उत्कृष्टता हो और जिसका प्रभाव प्रत्येक पाठक पर यथेष्ट रूप में पड़ सके। साथ ही जिसमें ऐसा आकर्षण हो कि उसके लिये पाठकों में उत्साह और उत्कंठा बराबर ही बढ़ती जाये। इस प्रकार की रचना को विशेषतया एक ही प्रकार के छंद में रखना चाहिये। यद्यपि रचना कई भागों में विभक्त की जा सकती है, किंतु महाकाव्य के समान उसमें अधिक सर्ग न होने चाहिये। यदि इस रचना को सर्गों में विभक्त किया गया है तो सभी सर्गों में एक ही प्रकार का छंद रखा जा सकता है, अथवा छन्दान्तर भी किया जा सकता है। प्रायः छन्दान्तर करना अनुपयुक्त है और छन्दान्तर किया भी नहीं गया, क्योंकि इस काव्य में जीवन की किसी एक विशेष घटना अथवा उसके एक खंड का ही वर्णन किया जाता है, इसीलिये इस काव्य को खंड काव्य कहते हैं। इस काव्य के नायक के लिये भी लगभग वे ही नियम हैं जो महाकाव्य के नायक के लिये कहे गये हैं, और इस काव्य में प्रायः नायिका को न रखकर केवल नायक को ही प्रधानता दी जाती है। किंतु कवि स्वतंत्रता रखता हुआ इसके अतिरिक्त भी कार्य कर सकता है। इस काव्य में महाकाव्य के

समान प्रातः, संध्या, ऋतु आदि से सम्बंध रखने वाले चित्रण नहीं रहते। यदि उद्दीपन विभाव की आवश्यकता हुई तो बहुत ही संक्षेप में सांकेतिक ढंग से समय और परिस्थिति को अंकित किया जा सकता है।

महाकाव्य में जिस प्रकार पूर्ण जीवनांकन के होने के कारण चरित्र चित्र की चारुता देखी जा सकती है उसी प्रकार खंड-काव्य में नहीं, -क्योंकि इसमें जीवन की केवल कोई घटना विशेष ही वर्णित होती है, फिर भी नायक के चरित्र की ओर या तो कवि स्वयमेव अथवा अन्य पात्रों के द्वारा संकेत कर या करा सकता है। घटना-चित्र से अवश्यमेव उसके चरित्र की कुछ विशेष बातों का कवि यथेष्ट परिचय दे सकता है।

चूँकि खंड-काव्य में स्थान-लाघव रहता है, इसलिये वर्णनीय दृश्य आदि के चित्रण भी प्रायः नहीं रहते अथवा यदि आवश्यकतावशात् रक्खे भी गये तो बहुत ही सूक्ष्म रूप में रहते हैं। इसी प्रकार घटना सम्बंधी और भी कितनी ही बातें या तो बिल्कुल ही छोड़ दी जाती हैं या सांकेतिक रूप में दी जाती हैं। उन्हीं बातों पर विशेष बल दिया जाता है जिनमें भावानुभूति की तीव्रता और प्रभावोत्पादकता विशेष रहती है। काव्य-कौशल का भी रूप साधारण ही रक्खा जाता है, क्योंकि कथानक को बल देते हुये उसके विकास के लिये पूरा स्थान और समय कवि के पास नहीं रहता।

खंड-काव्य में इसी प्रकार विशद सम्वाद अथवा वार्तालाप भी नहीं चलाया जा सकता वरन् यथावश्यकता उसे संक्षिप्त रूप देकर ही भाव-व्यंजक और मनोरंजक रखना पड़ता है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि खंड-काव्य में काव्य-कौशल रहता ही नहीं। उसमें चारु चमत्कृत अलंकार-

योजना रक्खी जा सकती है। हाँ, उसे ही प्राचुर्य और प्राधान्य नहीं दिया जा सकता और उतने ही रूप में उसे रक्खा जा सकता है जितने रूप में वह रस-भाव का पूर्णतया पोषक, उत्कर्षक और सहायक होता है। खंड-काव्य के लिये भी महाकाव्य के समान इतिहास या पुराण से किसी ऐसी रोचक कहानी अथवा घटना के लेने की आवश्यकता होती है जिसका नायक देव-श्रेणी अथवा देवोपम राज-पुरुष और सद्गुणी हो।

हिंदी में खंडकाव्यों की संख्या बहुत कम है। ब्रज भाषा के कृष्ण-काव्य में लीला-काव्यों की तो कोई कमी नहीं है किंतु खंड-काव्यों की अवश्यमेव है। 'ध्रुवचरित्र' और 'सुदामाचरित्र' जैसे कुछ मध्यकालीन खंडकाव्य 'हरिश्चंद्र' गंगावतरण' और अभिमन्युवध' जैसे आधुनिक खंडकाघ्य ब्रज भाषा में मिलते हैं। खड़ी बोली के क्षेत्र में भी इनकी संख्या अधिक नहीं है। अभी खड़ी बोली के काव्य का प्रारम्भिक काल हो चल रहा है, फिर भी इस काल में 'जयद्रथवध', 'पंचवटी' जैसे कई अच्छे खंडकाव्य खड़ी बोली के क्षेत्र में सुकवियों ने रख दिये हैं।

प्रस्तुत काव्य खंडकाव्य की ही दृष्टि से लिखा गया है, जिसमें महाराज भोज के, जिनके विद्या-प्रेम, कविकाव्यानुराग, की कितनी ही कीर्ति-कारिणी कथायें संस्कृत में मिलती हैं बाल्य जीवन की एक प्रसिद्ध और प्रशस्त घटना यहाँ चित्रित की गई है। इससे भोज के उच्चोदार होने का अच्छा परिचय प्राप्त होता है तथा बालकों के लिए एक आदर्श और ग्रहणीय अथवा अनुकरणीय उपदेश का आभास मिलता है। भोज वस्तुतः देवोपम शुभ गुणलंकृत महा मनस्वी, स्तुत्य तपस्वी और विशद यशस्वी महाराज हुये हैं। वे काव्य-नायक होने की पूरी क्षमता रखते हैं।

इस प्रकार इसमें जो कथा-चित्र है वह बहुत-कुछ भोज-प्रबंध के आधार पर रखा गया है। साथ ही कुछ कल्पना-कृत हेरफेर भी चारित्रिक चित्र-चारुता की दृष्टि से किया गया है। विचार यह भी रखा गया है कि पाठकों पर किसी भी प्रकार का दूषित प्रभाव न पड़े। इसलिये घटना-चित्र में कुछ स्वतंत्रता के साथ रंग दिये गये हैं। चित्र का आधार अवश्यमेव उस ऐतिहासिक कथा पर ही है, जो भोज-प्रबंध में मिलती है। विशेष दृष्टि-कोण इस काव्य के लिखने में यह रहा है कि यह काव्य इंटरमीजियेट श्रेणी के विद्यार्थियों के लिये उपयोगी और उपयुक्त रहे। भाषा और शैली इसलिये विशेष व्यंजक, कठिन और अलंकृत नहीं रक्खी गयी। हमारे कवियों ने जो खंडकाव्य लिखे हैं, उनके लिखने में उनका दृष्टि-कोण दूसरा ही रहा है। इसीलिये वे खंडकाव्य प्रायः उच्च कक्षाओं के लिये ही उपयुक्त और उपयोगी ठहरते हैं।

काव्य का तीसरा रूप मुक्तक है, इसकी विशेषता यह है कि इसमें एक ही छंद के द्वारा एक संक्षिप्त भावना-भरी साधारण घटना का उल्लेख करते हुये भावानुभूति का पूरा चित्र सर्वथा पर्याप्त और पूर्ण रूप से दे दिया जाता है। मुक्तक की विशेषतायें तथा उसके विकसित स्वरूप यहाँ विवेचनीय नहीं। आशा है यह पुस्तक अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगी।

—लेखक

भोजराज

(१)

जय जयति जय अखिलेश जिसकी लेश करुणा से सदा,
सम्प्राप्त होती सिद्धि सौम्य समृद्धि सारी सम्पदा।
होते अपावन पतित पावन एक जिसके नाम से,
संसार के कल्याण की है याचना उस राम से ॥

(२)

सुन्दर समय था सर्वथा सब ओर सुख-साम्राज्य था,
इस भव्य भारत-भूमि पर जब भारतीय सुराज्य था।
जीवन सुखी सब थे बिताते, सर्वथा सम्पन्न हो;
ऐसा न कोई था कहीं भी, जो विपत्त-विपन्न हो ॥

(३)

सब वर्ण निज निज कर्म में, जब धर्म में आरूढ थे,
अवगत यहाँ जो हों न, प्रश्न कहीं न ऐसे गूढ़ थे ;
विद्या-व्यसन में व्यस्त रहते देश-वासी सर्वथा ;
होती कहीं न कदापि किंचिन मात्र कोई दुख-कथा ॥

(४)

उन्नत समस्त समाज था, सबके विचार पवित्र थे,
आबाल, वृद्ध, युवा सभी के चारु चित्त-चरित्र थे ।
मानव-प्रकृति के साथ बाहर की प्रकृति अनुकूल थी :
प्रत्येक ऋतु में जो यथारुचि दे रही फल-फूल थी ॥

(५)

बस शास्त्र-चिन्ता छोड़ कर चिन्ता न कोई अन्य थी,
संसार में प्रख्यात हिन्दू जाति धन्य, अनन्य थी ।
थे सब सदाचारी, विचारी, सुपथचारी सर्वथा ;
पर-हित जिन्हें था आत्महित, नित निज कथा थी पर-कथा ॥

भारत-निवासी साहसी, दृढ़ धीर, वीर, वदान्य थे,
सत्यव्रती, सुकृती, धृती संसार में सम्मान्य थे ।
शासक तथा शासित समान रहे, न कोई भेद था :
कुछ भी कहीं न समाज के सम्बन्ध में विच्छेद था ॥

(७)

थे नृप निरन्तर निज प्रजा को पुत्र ही सा पालते,
नित सज्जनों का त्राण करते, दुर्जनों को घालते ।
दुर्भिक्ष, दुःख, दरिद्रता बस कोष ही में प्राप्त थे ;
यह शब्द भी सामान्यतः न समाज में कुछ व्याप्त थे ॥

(८)

भारत समुन्नति कर रहा था ज्ञान में, विज्ञान में,
कहना न होगा, पा लिया था ब्रह्म को भी ध्यान में ।
जिसको न जग था जानता, वह ब्रह्म बस आराध्य था ;
जो था असाध्य नितान्त, भारत के लिए वह साध्य था ॥

(९)

था यह स्वतंत्र स्वतंत्रता देता सभी का नित्य था,
सब विश्व के बंधुत्व-भावालोक-दीपित चित्त था।
धन-धान्य से आपूरिता सब ओर थी भारत-मही ;
सरिता-सरोवर में भरा था दूध और दही-मही ॥

(१०)

शोभित तभी अमरावती सी नागरी, सुगुनागरी,
थी एक धारा नाम की नगरी प्रशस्त प्रजागरी ।
सुन्दर समाकर्षक सजावट से सदा सज्जित रही ;
अमरावती, अलकापुरी, भी देखकर लज्जित रही ॥

(११)

शोभित नृपति रहते सदा कवि-कोविदों के वृंद से,
पूरित नृपति-दरबार रहता काव्य के आनन्द से ।
नित प्रति हुआ करतीं चमत्कारित समस्या-पूर्तियाँ ;
कवि-कुल उठाता काव्य-कौशल में नवीन-स्फूर्तियाँ ॥

(१२)

पंडित सुधी, साहित्य-मंडित थे समालोचक महा,
जो थे किया करते विवेचन काव्य का रोचक वहाँ।
साहित्य के ही साथ में संगीत का माधुर्य था:
माधुर्य में भी कल्पना-कौशल-कलित चातुर्य था॥

(१३)

यद्यपि नृपति स्वयमेव निर्मल नीति-नय-नागर रहे,
सन्मंत्रणा के हित तदपि मन्त्री विवेकागर रहे।
यद्यपि कभी किंचित कहीं होता न अत्याचार था:
यदि हो गया तो न्याय से निष्पन्न तत् प्रतिकार था॥

(१४)

थे व्याघ्र-बकरी एक ही तट पर सलिल पीते सदा,
ऐसे सुशासन में भला होगी कभी कुछ आपदा।
था सैन्य-बल बस आततायी-वृंद से परित्राण को;
आतंक जिसका नित सुखाता शत्रुओं के प्राण को॥

(१५)

अभ्यास प्राची में अगर था हो रहा सन्ध्यास्त्र का,
तो था प्रतीची में पटुत्व-प्रयास भी शस्त्रास्त्र का ।
निज निज कलाओं में कलाविद खोज करते नित नई ;
थी ज्ञान में विज्ञान में अन्वेषणा होती नई ॥

(१६)

इस भाँति सारे राज्य में सब भाँति विद्या-वृद्धि थी,
थी सिद्धि भी सब कार्य में, सम्प्राप्त ऋद्धि-समृद्धि थी ।
परिचित न कोई व्यक्ति था कुछ भी कहीं दुष्कर्म से ;
थे विश्व में निर्भय सभी, हाँ सभय थे बस धर्म से ॥

(१७)

जब कर चुके नृप बहुत दिन तक राज्य सब सुख-शान्ति से,
कुछ शिथिल से होने लगे जब वे जरा की क्लान्ति से ।
चिन्तित लगी करने बहुत उनकी उन्हें अनपत्यता ;
फिरने लगी साकार जीवन की नितान्त असत्यता ॥

(१८)

वे बस इसी में नित्य चिन्तित चित्त हो रहने लगे,
अपनी व्यथा वे संयमी बस आप ही सहने लगे।
यों किन्तु उनके चित्त की उद्विग्नता न छिपी रही :
लक्षित लगी होने बदन पर सर्वथैव सही सही ॥

(१९)

तब एक दिन कृश गात उनका देख महिषी ने कहा,
हे आर्य-जीवन-धन हृदय मम बहुत व्याकुल हो रहा।
अब तक दबाती ही गई निज भावनादि यथा-तथा;
अब सह्य है न हमें हमारी यह असह्य मनोव्यथा ॥

(२०)

बस इसलिए कर धृष्टता कुछ पूछना हूँ चाहती,
अवगाह कुछ पायी नहीं, यद्यपि रही अवगाहती,
कारण न पाती खोज कृशता आ रही क्यों आप में ;
देखा जभी पाया तभी कुछ आप हैं संताप में ॥

(२१)

धर्मानुसार विचारकर अपनी मुझे अर्द्धांगिनी,
सुख-दुख, जयाजय आदि में सब भाँति ही निज संगिनी।
जो कुछ हृदय में हो उसे यह जान प्रकटित कीजिए;
चिन्ताकुलित पथ में मुझे भी साथ अपने लीजिए॥

(२२)

सुनकर नृपति ने मुस्कुराकर यों कहा "कुछ है नहीं,
चिन्तित बना सकती मुझे क्या बात वह भी है कहीं।
ऐश्वर्य है, आतंक है, सम्पत्ति-संकुल राज है;
सुख-शान्ति का सब साज है, सम्पन्न राज-समाज है॥

(२३)

है कुछ न चिन्ता चित्त में प्राण-प्रिये! निश्चिन्त हूँ,
बस कुछ जरा को देख कर अजरेश हेतु सचिन्त हूँ।
यों नृपति देकर सान्त्वना जब मौन होकर रह गये;
बस तब सजल होकर नयन सब भाव मन के कह गये॥

(२४)

थे नृप अँधेरा देखते जा था नयन में छा गया,
यद्यपि बहुत रोका गया फिर भी वचन में आ गया।
बरबस कहा नृप ने कि ऐ हृदयेश्वरी ! प्राणप्रिये !
किस जन्म में किस भाँति क्या क्या पाप थे हमने किये ॥

(२५)

है आज यह परिणाम जिनका दीख पड़ता सामने,
नृप-वंश का न दिया दिया, यद्यपि दिया सब राम ने।
सचमुच बिना उस रत्न के यह व्यर्थ सारे रत्न हैं;
सब रत्न पाये, यह न पाया कर चुके सब यत्न हैं ॥

(२६)

कह नृपति यों दो बूँद रोकर साँस लम्बी ले रहे,
बस वचन रानी ने तभी गंभीर धैर्य-भरे कहे।
साहस, विवेक, विचार रख क्यों नाथ ! क्या यह सोचते;
होकर हताश अधीर क्यों नैराश्यनीर विमोचते ॥

(२७)

बस इस तनिक सी बात के हित आप घबड़ायें नहीं,
है नित हरिच्छा मुख्य ऐसा सोंच अकुलायें नहीं।
है स्मरण प्रभु को या नहीं, बस कुछ दिनों की बात है ;
था जब कहा ऋषि ने कि अब ल आ गया सुप्रभात है ॥

(२८)

बस बस उसी दिन से मुझे इस बात का विश्वास है,
निश्चय सफल होगी त्वरित जो आप की अभिलाष है।
मैं उस दिवस से ही निरन्तर कर रही व्रत-साधना ॥
भव-भूत-भावन भव्य श्री भगवान की आराधना ॥

(२९)

यदि कर सकें कुछ आप भी प्रभु-अर्चनादिक भाव से,
तो ठीक है, होता सभी कुछ साध्य पुण्य-प्रभाव से।
सुनकर नृपति ने बात महिषी की उचित यह मान ली;
त्यों शीघ्र शुभ दिन शुभ घड़ी से साधना की ठान ली ॥

(३०)

फिर सौंप अपना राज-काज प्रधान मंत्री को दिया,
लेकर प्रिया को साथ निज प्रस्थान तप के हित किया।
जाकर पुनीतांचल हिमांचल प्रान्त में रहने लगे;
निर्जल, निराशन शीत-ताप कठोर सब सहने लगे॥

(३१)

फिर योग-विध से ले समाधि अखंड प्रभु के ध्यान में,
एकाग्र कर चित-वृत्तिया अनुरत हुये गुण-गान में।
निश्चल शरीर निहार उनका थे मृगादिक चाटते;
हिंसक बनैले जन्तु आते, किन्तु देह न काटते॥

(३२)

यों उग्र तप यह देख उनका शुद्ध सात्विक भाव से,
श्री सहित श्री-पति हो उठे अति द्रवित करुण स्वाभाव से।
प्रगटित हुये ज्यों ही कि दिव्यालोक त्यों ही छा गया;
साधक मिथुन के हृदय में वह शीघ्र सौम्य समा गया॥

(३३)

बस खुल गये युग चक्षु भीतर और बाहर के तभी ,
निज सामने वह मूर्ति देखी जो न देखी थी कभी।
फिर जान ली, पहचान ली, राजर्षि ने वैष्णव कला ;
वह जान क्यों जायें न जब हरि ही जानते हों भला ॥

(३४)

गिर कर चरण पर चाव से बोले कि देव ! प्रणाम है ,
आसीन होने के लिए, हे नाथ ! यह हृद्धाम है।
हैं हम अकिंचन, आपका किस भाँति अभिनन्दन करें ;
असमर्थ वाणी-बुद्धि है, किस भाँति प्रभु-वन्दन करें ॥

(३५)

दर्शन दयामय आपका पाकर हुये कृतकार्य हैं ,
हैं धार्य केवल आपही, यह सत्य कहते आर्य हैं।
कहते हुये यों नृपति उर में उमड़ आया भाव था ;
जिसको न वाणी कह सकी, ऐसा चढ़ा चित चाव था ॥

(३६)

कर जोड़ फिर श्री को प्रणाम अनेक रानी ने किया ,
कर शीश पर धर चाव से आशीष कमला ने दिया ।
"हूँ मुदित, बेटी ! मैं तुम्हारी भक्ति से, अनुरक्ति से ;
निश्चल रहे सौभाग्य-सुख तेरा सुदिव्या शक्ति से ॥

(३७)

श्री-कथन में हरि ने कथन अपना मिलाकर यों कहा ,
"होगा मनोरथ सफल वह मन में तुम्हारे जो रहा ।
फिर मुसकुराकर मंदता से स्नेह सरसाते हुये :
पावन गिरा से प्रेम का पीयूष बरसाते हुये ॥

(३८)

रखकर कृपा- कर माथ पर श्री-नाथ ने नर-नाथ के
हँसकर कहा, नृप ! और कहिये जो मनोरथ साथ के ।
सुनकर नृपति बोले, तुम्हें पा, कुछ न पाना शेष है ;
हां कुंवर तव पद-भक्त प्रभु ! यह बात एक विशेष है ॥

(३६)

कहकर तथास्तु, रमा-रमेश अदृश्य त्यों ही हो गये,
उस युगल छबि के ध्यान में रानी-सहित नृप खो गये।
कुछ समय के उपरान्त पावन प्रेम के पय में पगे;
सोते हुये सुख-नींद मे मानो अचानक ही जगे॥

(४०)

जो कुछ सुना, देखा उसे बस स्वप्न केवल जानकर,
त्यों मानकर कल्पित उसे, फिर भी शकुन अनुमान कर।
होकर मुदित ले साथ महिषी को नगर में आ गये;
पाकर उन्हें सब पौरजन सर्वस्व मानो पा गये॥

(४१)

बस त्वरित जाकर गुरु-सदन में हाल सब नृप ने कहा,
सुनकर गुरू बोले कि नृप ! सौभाग्य यह तेरा महा।
बस एक, दो फिर तीन दिन क्रमशः लगे यों बीतने;
हो गर्भ-युत महिषी लगीं छबि-देह में भी रीतने॥

(४२)

वह दिवस आया शुभ तथा मध्याह्न की आई घड़ी ,
नक्षत्र अभिजित आ गया फिर आ गई बेला बड़ी ।
उच्चस्थ थे गृह चार शुभ स्वक्षेत्र-गत ग्रह तीन थे ;
थे रवि-रहित सब गृह उदित, प्रमुदित सबल,अमलीन थे ॥

(४३)

यों तब हुआ था जन्म उस नृप-वंश-हंस-समर्थ का,
जैसे हुआ ही साधना में जन्म साधक-अर्थ का ।
जब यह सुखद संवाद नृप से दौड़ दासी ने कहा ;
पाया नृपति ने वह, अतीव अभीष्ट जो उसको रहा ॥

(४४)

नृप-सदन में, सब नगर में, बाजे विविध बजने लगे,
अभिनन्दनार्थ कुमार के राज सविधि सजने लगे ।
लेने हिलोरें भी लगा सागर नगर में हर्ष का ;
परिचय लगा देने प्रजा का वर्ग प्रेमोत्कर्ष का ॥

(४५)

यों उस समय इस छबि-छटा को देख लगता था यही ,
प्रेमार्चना निज नाथ की करती मुदित मानो मही ।
पुर-जन तथा परिजन, महाजन, राज-पुरुषामात्य भी :
अर्पित लगे प्रेमांजली करने वहाँ आकर सभी ॥

(४६)

प्रमुदित नृपति दरबार में आशीष, अभिनन्दन तथा,
थे कर रहे स्वीकार सादर नम्रता से सर्वथा ।
चारण चतुर, वन्दी-जनादिक बोलते विरुदावली :
कोविद तथा कवि मंगलाकांक्षामयी रचनावली ॥

(४७)

जोतिष-विशारद जन्म-लग्न विचार कर जन्मांक से,
थे कह रहे कि कुमार प्रकटे सर्वथैव शशांक से ।
यह शिशु विशद विद्वान परमैश्वर्यशाली सर्वथा :
सब जगत में चिरकाल तक इसकी रहेगी यश-कथा ॥

(४८)

अप्रतिम होगा धीर, वीर, उदार विद्या-बुद्धि में,
सब विधि विचाराचार सद्व्यवहारता की शुद्धि में।
नागर, गुणागर देश भारत का उजागर सर्वथा;
नायक विनायक-सदृश होगा देश-उन्नायक तथा ॥

(४९)

संतत कृती सुकृती तथा विद्या-व्रती, नल विक्रमी,
निज देश-हित के हित रहेगा आर्य कार्य कृतश्रमी।
सुन्दर समन्वय दीखता अनुरक्ति और विरक्ति का;
इसमें सफल सम्मिलन होगा ज्ञान और सुभक्ति का ॥

(५०)

सत्काव्य-कवि-प्रेमी निरन्तर नीति-नय-नेमी तथा,
सहृदय, गुणज्ञ, गुणी भला सकला कला-प्रेमी तथा।
राजन्! समझिये, आपका यह आज पुण्योदय हुआ;
यदि सच कहें तो देश भारत का सुभाग्योदय हुआ ॥

(५१)

यों भगवदिच्छा जानकर आशीष हम भी क्यों न दें,
ध्रुव सत्य की चरितार्थता की फिर बड़ाई क्यों न लें।
राजन! कहें क्या और राज-कुमार चिरजीवी रहें;
पंडित, सुधी, कवि-राज इनके नित्य उपजीवी रहें॥

(५२)

यों सुन, कहा दरबार ने नर-पति हमारे धन्य हैं,
हैं धन्य महिषी, धन्य धारा और हम सब धन्य हैं।
एक स्वरोच्चारित गई फिर गूँज यों जय जय गिरा;
ज्यों सुर-जय-ध्वनि हो गुंजाता नभ मघन घन में घिरा॥

(५३)

नृप भर गये यह देख-सुन आनन्द से, उल्लास से,
त्यों मधुर गायन-वाद्य-ध्वनि आयी सुखद रनिवास से।
सोहर सुखद श्रुति-मधुर मंगल गान होते थे वहाँ,
नृप-कुल-कमल-लोचन नवोदित कुँवर रोते थे जहाँ॥

(५४)

सुन्दर, सुखद, मृदु, मधुर था सर्गीत यों उसमें रहा,
था रुदन जिसमें कुँवर का सब को मनो मोहक महा।
आनन-अतीवालोक-आलोकित हुई प्रसव-स्थली
नव रवि-प्रभा-पूरित यथा प्राभातकी प्राची-स्थली ॥

(५५)

सुन्दर सजाकर पौरकन्यायें उतारें आरती,
नवजात राज-कुमार की गाती हुई शुभ भारती।
कंचन, वसन, भूषण, विविध-रत्नावली यों वारतीं;
वैदिक तथा लौकिक सभी कुल-रीतियाँ अनुसारतीं ॥

(५६)

सन्तुष्ट जाते थे किये द्विज दक्षिणा से, दान से,
प्रमुदित हुये थे अपर जन उपहार से, सम्मान से।
उस राज-सदन-द्वार पर याचक सभी सन्तुष्ट हो:
थे कह रहे हे हरि ! कुँवर जागें, जियें सम्पुष्ट हो ॥

(५७)

बस इस प्रकार कुमार-जन्मोत्सव हुआ सम्पन्न था,
वितरित हुआ चल-अचल पुष्कल रूप में धन-अन्न था।
दस दिवस तक उत्सव अनेक प्रकार से नित-नित नये;
सब पुर तथा प्रासाद में सदुमंग से होते गये॥

(५८)

इस दशम दिन में राज-गुरु ने वेद-विधि से सर्वथा,
कर यजन-यज्ञादिक, निवाही रीति नृप-कुल की तथा।
इस दिवस से हे नृप! तुम्हारे राज्य में यह ज्ञात हो;
यह कुँवर भोज कुमार के ही नाम से विख्यात हो॥

(५९)

जब तक न दिन दस त्रिगुण का पूरा कुँवर-वरभोज हो,
तब तक तुम्हारी ओर से नित सब प्रजा का भोज हो।
यह वचन हे नर-राज-राज! अवश्यमेव कृतार्थ हो;
नृप-कुँवर का यह नाम जिससे पूर्णतः चरितार्थ हो॥

(६०)

वह दिवस आया राज-महिषी और नृप के हर्ष का,
था वह प्रथम दिन भोज-रसना के रुचिर उत्कर्ष का।
जिस दिवस भोज कुमार ने पहले-पहल माता कहा;
फिर कह पिता, नृप का हृदय उनमें दिया था लहलहा ॥

(६१)

बढ़कर कुंवर क्रमशः हुये जब पूर्ण सप्तम मास के,
यह दिवस कब बीते न जाने जा सके उल्लास के।
तब शोध शुभ दिन अन्न-प्राशन कुँवर का नृप ने किया;
दानादि देकर भोज नाम कुमार का सार्थक किया ॥

(६२)

दिन दिन नई प्रतिभा-प्रभा से कुँवर थे बढ़ने लगे,
निज जनक-जननी क्या, सभी के चित्त में चढ़ने लगे।
फिर पकड़ कर धात्र्यांगुली वे ठुमकते चलने लगे;
पुर-जन तथा परिजन सभी के प्रेम में पलने लगे ॥

(६३)

दिन दिन लगी उनकी निखरने सर्वथा सुषुमा-समा,
ज्यों निज कला से नित निखरता है कलाधर चन्द्रमा ;
अब ठुमकते चलते हुये कौतुक कुँवर करने लगे :
मृदु, मधुर निज तुतली गिरा से नृप-भवन भरने लगे ॥

(६४)

नृप-कुल-प्रथा थी जो तथा, जो शास्त्र-वर्णित धर्म था,
पालन उसे करते हुआ सम्पन्न चूड़ा-कर्म था।
इस विधि सभी विधि कुँवर के सब संस्कार किये गये :
सब पुर-जनादिक को उचित उपहार-हार दिये गये ॥

(६५)

फिर समय पर उपवीत उनका उर-उमंग-उराव से,
विधि-सहित था नृप ने किया निज चौगुने चित-चाव से।
पूजन-यजन सब विधि-यथा विधि भारती का कर तथा :
नृप ने कराई मुदित विद्यारंभ की पूरी प्रथा ॥

(६६)

शुभ दिन तथा सुमुहूर्त में आकर प्रधानाचार्य ने,
देकर उचित उपदेश वटु उनको बनाया आर्य ने।
श्री शिवाय नमः तथा हरये नमः के मत्र दे:
श्री गिरायै नमः, कहला, लेखनादिक यंत्र दे॥

(६७

ॐ नमः सिद्धम् स्वय लिख कँवर के कर मे दिया,
कर अनुकरण श्री भोज ने पढ़, पट्टिका पर लिख दिया।
था यह प्रथम दिन,प्रथम अवसर,पठन का अथ था अभी ;
था श्री गणेश, प्रशस्त प्रतिभा देख विस्मित थे सभी॥

(६८)

हे कँवर ? गुरु ने कहा तुमको आज से क्या कार्य है,
उत्तर मिला,बन ब्रह्मचारी अध्ययन ही आर्य है।
है जनक-जननी कौन, पूछा नृपति ने फिर भोज से ;
आचार्य हैं माता-पिता,यों भोज बोले ओज से॥

(६९)

था अपर प्रश्न कि राज्य-धन या ज्ञान में क्या धार्य है,
उत्तर मिला, है धार्य विद्या ही, यशोधन आर्य है।
फिर नृपति बोले कठिन है तुम विपिन में जा रह सको;
उत्तर मिला, मैं सब सहूँगा, तुम न चाहे सह सको॥

(७०)

सुन कुँवर के उत्तर, कहा कुछ ने कुँवर जी धन्य है,
नृप-कुँवर ऐसी प्रखर प्रतिभा का कदाचित अन्य है।
कुछ अपर जन कह वाह वाह सराहना करने लगे;
पुर-जन सभी कह साधु साध्विति चाहना करने लगे॥

(७१)

इस विधि हुआ सम्पन्न विद्यारम्भ का शुभ कार्य था,
अब कुँवर को आचार्य जी के साथ वन सहचार्य था।
नृप-कुँवर-वर बटु-वेश में वन के लिये जब थे चले;
तब जनक-जननी-मृदुल-मन वात्सल्य से कुछ कलमले॥

(७२)

निज जनक-जननी के छुए पद भक्ति से तब भोज ने;
ज्यों रवि-उषा-वन्दन किया हो नम्र प्रात-सरोज ने।
होकर मुदित दम्पति कुँवर का सूँघ शिर आशीष दे,
बोले कि चिर जीवन तुम्हें बल, बुद्धि, विद्या ईश दे॥

(७३)

तब फिर इसी विधि राज-गुरु ने भी शुभाशीर्वाद दे,
शारद करें विद्या-विशारद आपको स्वप्रसाद दे।
पुर-जन लगे कहने इसी के साथ प्रेमावेश से,
होकर कुँवर गुण-ज्ञान-पटु लौटो त्वरित राकेश से॥

(७४)

इस विधि शुभाशिष-वचन-वर्षा-सिक्त होकर सर्वथा,
थे जब कुमार चले, चले तब साथ पुर-जन भी तथा।
सेवक, जिन्हें प्रिय थे कुँवर, थे कुँवर को प्रिय जो बड़े,
वे सब सनेहाकुलित होकर कुँवर-पद पर आ पड़े॥

(७५)

तब अनुग जो था वृद्ध अति आकर बड़े ही चाव से ,
लेकर कँवर को अंक में कहने लगा सद्भाव से।
रखकर जिसे निज गोद मैंने था समोद खिला-पिला ;
अब कर सका इतना बड़ा निज जीव-सा जिसको जिला ॥

(७६)

वह कुंवर अब कैसे बिना मेरे अकेले जा रहे ?
हे नृप ! क्षमा हो, भाव ये मुझ से न झेले जा रहे।
बस बस मुझे भी कुंवर जी के साथ जाने दीजिये ;
जीवन रहा जो शेष सेवा में बिताने दीजिये ॥

(७७)

यों सुन नृपति निज वृद्ध जन की स्वामि-भक्ति विचार कर ,
प्रिय कुँवर पर वात्सल्य-भाव, सदानुरक्ति निहार कर।
हो सजल दृग, वाष्पाकुलित स्वर से नृपति कहने लगे ;
अविकल भला हो तुम पितामह-तुल्य क्यों रहने लगे ॥

(७८)

जो कुछ कहा तुमने भरा उसमें तुम्हारा चाव है,
है यह तुम्हारा भक्ति-भाव-प्रभाव सौम्य स्वभाव है।
है यह सही कि इन्हें तुम्हीं ने पाल-पोष बड़ा किया,
सुख-दुख भुला, निज को इन्हीं के प्रेम में जकड़ा लिया॥

(७९)

क्यों तब न तुमको इस तरह इनका गमन अखरे भला?
हैं वह विरागी जन जिन्हें, अवसर नहीं ऐसा खला।
जो कह रहे हो, हम उसे सब भाँति ही सच जानते,
कुछ कह नहीं सकते तुम्हें हम चूँकि अपना मानते॥

(८०)

जो कुछ करो उसमें तुम्हें कब टोंक सकता कौन है,
जो कुछ कहो उसमें तुम्हें कब रोक सकता कौन है।
है नियम निश्चित किन्तु वटु जाकर अकेले ही पढ़े;
बन ब्रह्मचारी सत्कृती आचार के पथ में बढ़े॥

(८१)

होकर विरक्त सुखादि से, हो विमुख निज घर-द्वार से,
रह कर सदा अनुरक्त निज आचार्य, वटु-परिवार में।
जो कुछ मिले भिक्षान्न पहिले वह गुरू को दे सभी ;
गुरु-दत्त भोजन-तुष्ट रह होवे न अति भोजी कभी ॥

(८२)

अनुदिन स्वगुरु-सेवा करे सब भाँति श्रद्धा-भाव से,
सब समय विद्याध्ययन में अनुरत रहे अति चाव से।
यों यम, नियम सब पालते विद्यादि गुरु से प्राप्त कर ;
निज सदन में आये तदा वर ब्रह्मचर्य समाप्त कर ॥

(८३)

बस इसलिये ही कुँवर प्यारे यों अकेले जा रहे,
होकर मुदित आशीष दो, क्यों मोह से घबड़ा रहे ?
हाँ, कुँवर आवेंगे सुअवसर प्राप्त होगा जब कभी ;
जा कर वहीं हम देख सकते हैं जभी चाहें तभी ॥

(८४)

सुन नृप-वचन ये सान्त्वना के, धैर्य कुछ धारण किया ,
प्रिय कँवर को उर से लगा आशीष-अनुसारण किया ।
इस विधि बिदा होकर कुँवरवर भूरि भावों से भले ,
प्रमुदित प्रधानाचार्य जी के साथ-साथ गये चले ॥

(८५)

शुभ शकुन कितने ही हुए वे जब बिदाई ले चले ,
जो कुँवर के सुभविष्य की शुभ-सूचनायें दे चले ।
आकर अचानक पय पिलाने एक गौ शिशु को लगी ,
सम्मुख मिले दधि, मीन, बायें सुतरु पर श्यामा खगी ॥

(८६)

शिर पर धरे पय-पूर्ण घट सुभगा मिली आ सामने ,
दर्शन दिया सहसैव आकर विप्रवर अभिराम ने ।
इस विधि बराबर मार्ग में सुन्दर शुकुन आते गये ,
जो सब प्रकार कुमार का सौभाग्य दर्शाते गये ॥

(८७)

पथ पर कुँवर को प्रथम दिन शकुनादि के सब सत्त्व का,
परिचय गये देते गुरू जी प्रकृति-मर्म-महत्त्व का।
फिर विविध वन्य विहंग-पशु-परिचय उन्हें देते तथा,
वन-विटप-वल्लरियाँ बताते और कहते कुछ कथा॥

(८८)

मृदु, मधुर फल खाते-खिलाते, चित्त बहलाते हुए,
पथ पर पुराने सुस्थलों में तनिक टहलाते हुए।
उस सुभग सर पर आ गये जो वारि-वारिज-पूर था,
आश्रम जहाँ से रम्य वेद-ध्वनि-भरा कुछ दूर था॥

(८९)

आश्रम दिखाकर कुँवर को आचार्य ने उनसे कहा,
पथ-श्रम सभी हम दूर कर लें इस सरोवर में नहा।
मार्जन किया गुरु-शिष्य ने, फिर सान्ध्य-कृत्य सभी किया:
बस फिर वहीं पर भोज ने सन्ध्योपदेश तभी लिया॥

(६०)

आश्रम निकट था शीघ्र दोनों बात करते आ गये ,
बस साथ उनके चन्द्र भी प्राची दिशा में छा गये ।
मञ्जुल मयंक मरीचि-माला डाल ऐसे था रहा ;
मानों समादर उस तपोवन-हेतु था दिखला रहा ॥

(६१)

सुनकर सभी वटु-वृन्द निज आचार्य के आगमन को ,
आकुल हुआ आचार्य-वर-पद-दर्शनाशा-शमन को ।
निज-निज कुटीरों से सभी वटु दौड़कर आये वहाँ ;
नृप-कँवर-युत आचार्य थे निज पर्ण-शाला में जहाँ ॥

(६२)

निज गुरु-पदाम्बुज-रज सभी सद्भक्ति से लेने लगे ,
गुरुवर तथा आशीष सबको स्नेह से देने लगे ।
होकर चकित सब देखते थे सौम्य राज-कुमार को ;
अवतरित मन में मानते थे अवनि पर मृदु मार को ॥

(६३)

गुरुवर कुतूहल देख उनका मन्द मुसकाते हुए,
यों बस तभी कहने लगे सुस्नेह सरसाते हुए।
हे कुँवर! यह देखो, हमारा ब्रह्मचारी-वृन्द है;
पाकर तुम्हें जो मानता मन में अपूर्वानन्द है॥

(६४)

तुम इन सबों को आज से प्रिय बन्धु अपना मानना,
सब विधि सदा शुचि भाव से इनको सगा ही जानना।
सुनकर कुँवर ने हाथ जोड़ प्रणाम करके यों कहा;
इतने मिले हैं बन्धु मुझ को भाग्य यह मेरा महा॥

(६५)

इस पर गुरु जी ने कहा विद्याव्रती प्रिय बालको!
लो इस समय पहचान निज भावी धरा-प्रतिपाल को।
यह चतुर राज-कुमार हैं, प्रिय नाम इनका भोज है;
नृप-कुल-सरोवर के नवोदित सुखद सौम्य सरोज है॥

(६६)

अब यह यहाँ रहकर पढ़ेंगे तुम सबों के साथ में,
सब विधि सदा रखना इन्हें सप्रेम अपने हाथ में।
इस विधि प्रधानाचार्य ने युवराज का परिचय दिया ;
उस प्रथम दिन में ही सबों ने बन्धु-भाव जगा लिया ॥

(६७)

बस कुँवर दो ही चार दिन में सर्वथा हिल-मिल गये,
उस विमल विद्या के सरोवर में कमलवत् खिल गये।
प्रति दिन उषा में विगत-निद्रा नियम नैत्तिक कर तथा ;
कर सविधि सन्ध्या, वेद पढ़, सुनते पुराणों की कथा ॥

(६८)

आसन तथा व्यायाम, प्राणायाम करते नित्य थे,
सेवन पवन प्राभातकी कर, स्वस्थ करते चित्त थे।
त्यों पाठ निज पढ़ ध्यान मे भिक्षार्थ फिर जाते रहे ;
पाकर उन्हें याचक सभी थे पौर सुख पाते रहे ॥

(९९)

वे जब, जहाँ, जिस द्वार पर थे याचना करते रहे,
निज मृदुल मीठे वचन से सब का हृदय हरते रहे।
उन पर सभी कुछ वारने को पौर जन तैयार थे;
थे किन्तु करते निज नियम-अनुसार वे सब कार्य थे॥

(१००)

जो कुछ मिला भिक्षान्न, गुरु को कर समर्पित प्रेम से,
जो कुछ गुरू देते उसे पाते वहाँ नित नेम से।
लगकर पठन में थे बिताते समय सन्ध्या तक तथा;
पूजन, भजन, निज सान्ध्य करते थे यथाविधि सर्वथा॥

(१०१)

प्रति दिन किया करते गुरू की सर्वथा सेवा सभी,
सत्त्वर किया करते गुरू की जो हुई आज्ञा जभी।
त्यों दाबकर गुरु-चरण उनको वे सुला देते जभी;
थे निज कुशासन पर शयन के हेतु वे जाते तभी॥

(१०२)

फिर नव प्रभात हुआ कि कार्यारम्भ नियमित हो चला,
यों कँवर शास्त्राध्ययन करते, सीखते सकला कला।
प्रति दिन विवर्धित बुद्धि-विद्या हो चली यों भोज की ;
विकसित सरोवर में कली हो ज्यों नवीन सरोज की ॥

(१०३)

निर्मल प्रखर प्रतिभा प्रकाशित नित नयी होने लगी,
उनपर निछावर इसलिए वटु-मण्डली होने लगी।
सत्वर कुँवर ने ओर अपनी ध्यान आकर्षित किया ;
शिक्षक तथा शिक्षार्थियों को सर्वथा हर्षित किया ॥

(१०४)

उन पर वहाँ के सब जनों को हो रहा अभिमान था ,
बालक वही उस पाठशाला की बढ़ाता शान था।
सब अनुसरण करते उसी की रीति का, नव नीति का ;
सब कथन करते भोज की सत्प्रीति और प्रतीति का ॥

(१०५)

बाहर लगी फिर फैलने उनकी सुगौरव-गीतिका .
पुर, नगर तक जाने लगा आलोक उनकी कीर्ति का।
प्रमुदित बहुत आचार्य होते भोज के चातुर्य से;
सुन्दर स्वभावाचार से, व्यवहार से, माधुर्य से॥

(१०६)

उत्सव तथा त्यौहार के शुभ-अवसरों पर जब कभी,
जाते कँवर निज सदन, सब को मुदित करते थे तभी।
सुन्दर विचाराचार उनका शुद्ध सद्व्यवहार था:
उस पर निछावर सर्वथा होता सभी दरबार था॥

भोज-भावी-चक्र

(१)

नर-पति जरागम देख निज में शीघ्रता से सर्वथा,
आकर कहा निज राज-महिषी से विचार यथा-तथा ॥
है यह पुरातन नीति आश्रम वाण-प्रस्थ तृतीय है;
वह नित जरागम के लिए कल्याणप्रद ग्रहणीय है ॥

(२)

अब यह जरा अंकुरित हममें और तुममें हो चली,
बस इसलिए है सेव्य हमको एक रम्य वन-स्थली ।
रहकर वहाँ के शान्त वातावरण वाले प्रान्त में;
बस हरि-भजन में दिन बितायें शेष अब एकान्त में ॥

(३)

जिस परम प्रभु की सत्कृपा से हम हुए कृतकाम हैं,
वे प्रभु विशेषतया हमें अब ध्येय, गेय, प्रकाम हैं ।
हम पर कृपाकर जिस कुँवर को है हमें प्रभु ने दिया;
रखकर कृपा की दृष्टि अब उसको सुयोग्य बना दिया ॥

(४)

है उचित हमको अब कि अवसर अनुज को दें राज का,
हरि-भजन-हित बन जायँ दे पद भोज को युव राज का।
सुनकर कहा तब राज-महिषी ने विनय के साथ यों ;
है उचित अब वस्तुतः करना, कह रहे हैं नाथ ! ज्यों ॥

(५)

अनुमति नृपति पाकर प्रिया की बस यही निश्चय किया,
सर्व प्रथम नृप अनुजवर श्री मुंज से सब तय किया।
पुर-जन तथा परिजन, महाजन, सभा-जन के सामने ;
स्वीकृत कराया यह विचार नरेशवर गुण-धाम ने ॥

:

निश्चित हुई तिथि, शुभ घड़ी सब साज भी साजा गया,
गुरुवर-सहित आये नरेशादेश से युवराज भी।
विधिवत् हुआ सब कार्य, नृप ने मुञ्ज को सब राज दे ;
अर्पित किया श्री मुंज-कर में भोज को युवराज दे ॥

(७)

हो सब चुका जब, कुँवर ने तब नृपति से सविनय कहा ,
हो यदि तवाज्ञा तो करूँ अध्ययन पूरा जो रहा।
समुचित कहा गुरु ने इसे, तब भोज स्वीकृति पा गये ;
कुछ समय के हित लौट आश्रम, साथ गुरु के आ गये ॥

(८)

देकर प्रजा को स्मृति विविध, शुभ-कामनाएँ ले गये,
निज राज-महिषी-साथ नर-वर-नाथ प्रात चले गये।
होकर नृपति अब मुञ्ज शासन-कार्य सब करने लगे ;
सब विधि प्रजा में आत्म प्रति सद्भावना भरने लगे ॥

(६)

यद्यपि बड़ी ही चतुरता से मुञ्ज शासन-कार्य को ,
रख साथ अपने नीति-निपुणामात्य पुर-जन आर्य को।
थी सब प्रजा उनसे प्रसन्न समाज में संतोष था ;
कुछ दुखद फिर भी मुञ्ज का होता कभी आरोष था ॥

(१०)

पुर-जन प्रजागण प्राण से प्रिय मानते युवराज को,
था प्रिय कँवर-व्यवहार मोहक सर्वथैव समाज को।
जब-जब कुँवर आते तभी थे यों सभी को मोहते;
सब इसलिए उनके सुशासन का सदा मग जोहते॥

(११)

यद्यपि कहीं कुछ भी प्रजा में मुंज का न विरोध था,
किञ्चित् कहीं उनके न शासन-कार्य का प्रतिरोध था।
थी भनभनाहट यदि कहीं तो मशक-चरखे में रही;
परिचित प्रजा सुख-शांति से, थी क्रांति से न कभी रही॥

(१२)

थे नृपति नित निश्चिंत, शंका थी नहीं कुछ भी कहीं,
थी एक शंका वह छिपी, जिसका निवारण था नहीं।
यों देख-सुनकर भोज के सुंदर विचाराचार को;
उनके प्रजा-हित और उनके हित प्रजा-व्यवहार को॥

(१३)

वह सभय होते सोचकर परिणाम इसका सर्वथा,
व्याकुल बना देती बहुत प्रायः उन्हें उनकी व्यथा।
कंटक बड़ा निज राज-पथ का सोचते वे भोज को ;
घातक अशनि-सा देखते थे वे मनोज्ञ सरोज को ॥

(१४)

यों समझकर युवराज को जनता बहुत है चाहती,
अप्रतिम उनके शील-गुण को हो विमुग्ध सराहती।
यदि इस प्रकार विचार जनता में यही रमता गया ;
उस पर कुँवर का यों सदैव प्रभाव यदि जमता गया ॥

(१५)

तो बस हमें यह मान लेना चाहिए ध्रुव अंक ही,
निश्चय हमें तब नृपति से होना पड़ेगा रंक ही।
यद्यपि उठा यह भाव किन्तु यथार्थ में निर्मूल था ;
जो लग रहा था शूल वह तो वस्तुतः मृदु फूल था ॥

(१६)

था यह महा अघ सोचना यों भोज के सम्बन्ध में,
पर यह विचार न जागता है स्वार्थ-रत-मति-अन्ध में।
जब-जब इसी विधि मुझ मन में भोज के प्रति सोचते ;
तब-तब कलेजा कांपता, चख-वारि-विंदु विमोचते ॥

(१७)

सत्वर उन्हीं का शुद्ध अन्तः करण यों फिर बोलता,
कर सब उपस्थित वस्तु की स्थिति सत्यता से खोलता।
यदि तनिक सोचो तो तुम्हारे भोज सुत-वर हैं सगे ;
वे सब प्रकार तवैव पावन प्रेम में पूरे पगे ॥

(१८)

फिर जब कभी स्वार्थान्धता, विभवान्धता, कृत-मूढ़ता,
तब यह सभी होती विलुप्त विचार की गति-गूढ़ता।
यों कुछ दिवस तक कलह सदसद् का हृदय में मुझ के ;
चलता रहा, जिससे रहे वे भ्रमर चम्पक-कुञ्ज के ॥

(१६)

यों एक दिन उनको विचिन्तित देख महिषी ने कहा,
प्रियतम ! कहो, क्यों चित्त चिन्तित आपका यों ही रहा।
है वह व्यथा क्या जो विकल करती हृदय को आप के ?
सच-सच कहें, हैं कौन कारण आप के सन्ताप के ॥

(२०)

सुनकर विनय निज प्रियतमा की नृपति ने हँसकर कहा,
अयि प्रियतमे ! सन्ताप-चिन्ता का न कछु कारण रहा।
हूँ सब प्रकार प्रसन्न, है सुख-शान्ति सारे राज में ;
हाँ, कुछ कभी मति-कलुषता कुछ दीखती युवराज में ॥

(२१)

यद्यपि कुँवर आज्ञानुवर्ती और वशवर्त्ती रहें,
मम ही नहीं, सारी प्रजा के वे निकटवर्त्ती रहें।
हैं सब प्रकार सुयोग्य, उच्च उदार, त्यागी, सत्कृती ;
सब विधि सदाचारी, विचारी, वीर, विद्या-व्रत-व्रती ॥

(२२)

वे निज जनक से भी अधिक मुझ को सदा ही मानते ,
सब कुछ उचित करते सदा कर्त्तव्य अपना जानते ।
दुर्बल हृदय फिर भी हमारा सोंचता है यह कभी ;
केहरि-किशोर न हो भयानक जाय, जो लालित अभी ॥

(२३

दृढ़तर बना देते तुम्हारे बन्धु-वर इस ताप को ,
अयि प्रियतमे ! कुछ बात और न छोड़ इस सन्ताप को ।
यह सुन महारानी लगीं कहने विनय-वाणी भली ;
हे नृप ! मुझे यह बात, सच ही जानिये, अति ही खली ॥

(२४)

बस, बस, न कुछ आगे कहे अब आप अपने भाव को ,
श्री कुँवर, उनके जनक-जननी के लखें उस चाव को ।
जिस सरल सुंदर, चाव से तुमको सभी लायक किया ;
निज तनय तुम को सौंप अपने राज्य का नायक किया ॥

(२५)

फिर कुँवर मुझ को मानता माता सदा सद्भाव से;
त्यों भूल निज पितु को तुम्हें ही मानता पितु चाव से।
इस सकल नृप-कुल-सदन का बस एक भोज प्रदीप है;
है सच यही, वह नृप-गुणालंकृत मनोज्ञ महीप है॥

(२६)

कलुषित विचारावलि हृदय से आप यह सब दें हटा,
है फिर हमारे कौन, जिसके हित रहे यों छटपटा।
यों कह मँगाया जाह्नवी-जल मन-विमलकारी तथा;
साग्रह पिलाया नृपति को, उसने पिया फिर सर्वथा॥

(२७)

यद्यपि यहाँ इस भाँति नृप में भावना शुचि जग गयी,
फिर कुछ दिनों में ही वही चिन्ताग्नि चित में लग गयी।
बस फिर वही सब तर्क और वितर्क-दल चलने लगा;
हाँ, अब बहुत वह सावधानी के सहित पलने लगा॥

(२८)

फिर एक दिन वह समय आया जब नृपति ने ठान ली ,
कलुषित हृदय कीं बात अनुचित भी उचित ही मान ली ।
आया समय जब अर्द्ध निशि का, पूर्ण जगती सो गयी ,
नृप-मति महा तम के महा तम में सभी विधि खो गयी ॥

(२९)

बस नृपति ने निज मुख्य मंत्री को बुला भेजा तभी,
है कुछ अनर्थ, न व्यर्थ बुलवाते मुझे यों नृप कभी ।
यों निज हृदय में सोंच मंत्रीवर त्वरित ही आ गये ;
जय जयति कह बोले कि क्या आदेश, प्रभु ! हम आ गये ॥

(३०)

देकर निकट आसन उन्हें नृप ने बड़े सम्मान से,
इस विधि कहा, तुम नित्य ही हो प्रिय मुझे जी-जान से ।
तुम पर भरोसा है मुझे, तुम में मुझे विश्वास है ;
जो तुम न जानो मर्म ऐसा कुछ न मेरे पास है ॥

(३१)

सब विधि रहे करते हमारी तुम सदैव सहायता,
प्रकटित किया न रहस्य, जिसका था तुम्हें पूरा पता।
अविचल तुम्हारी स्वामि-भक्ति सराहनीय सदा रही ;
तव बुद्धि-बल से यत्न-सरिता में सभी विपदा बही॥

(३२)

हो तुम चतुर नय-नीति-नागर योग्य हो, विद्वान हो,
साहस-परिश्रम-पटु, कला-कौशल-कृती गुण-वान हो।
सद्गुण तुम्हारे सोंच मैंने आज कष्ट दिया तुम्हें ;
तुम पर स्वप्रीति-प्रतीति का है भाव व्यक्त किया तुम्हें॥

(३३)

प्रियवर ! हमारे सामने आयी समस्या है कड़ी,
व्याकुल हमारी बुद्धि जिसको सोंचकर होती बड़ी।
यद्यपि विमल मति व्यर्थ, कलुषित वृत्तिकृत यह मानती ;
है उचित मूलोच्छेद इसका नीति यों अनुमानती॥

(३४)

यह तुम भली विधि जानते हो, आज मुझ में शक्ति है,
तुम सब सहाय : साथ हो, मुझ में प्रजा की भक्ति है।
धन-जन सभी बल से वली मेरे भली विधि हाथ हैं;
नायक निपुण, मंत्री विनायक से हमारे साथ हैं॥

(३५)

बाहर न भीतर शत्रु हैं, सब स्ववश हैं, निज मित्र हैं,
कुछ भय न शंका है मुझे, युवराज निज सुचरित्र हैं।
है यह परिस्थिति किन्तु चिन्ता चित्त में उठती यही;
हो कुछ, तदपि नृप-नीति इसको नित्य है कहती सही॥

(३६)

यद्यपि शरीर सभी प्रजा का है हमारे साथ में,
है तदपि उसका हृदय सच्चा भोज ही के हाथ में।
यदि यह दशा है तो हमारा नाम ही को स्वत्व है;
यदि सच कहें तो कुछ न मेरा मूल्य और महत्त्व है॥

(३७)

जब तक चली जाती दशा यह बस तभी तक जानिये ,
है यह महत्ता और सत्ता अल्प ही, यह मानिये ।
जिस दिन जभी युवराज का संकेत कुछ भी हो गया ;
उस दिन विभव सारा हमारा, पद तुम्हारा खो गया ॥

(३८)

प्रियवर इसी से आज यह आदेश देता हूँ तुम्हें ,
मैं निज सभी विश्वस्त जन में प्रथम लेता हूँ तुम्हें ।
लेकर हमारा रथ तथा आदेश-पत्र प्रमाण में ;
गुरु के निकट अब, जाँयं देर करें न रंच प्रयाण में ॥

(३९)

जाकर कहें नृप का मुझे आदेश है आचार्य ! है ,
लेकर कुँवर को शीघ्र आओ, कार्य कुछ अनिवार्य है ।
गुरुवर ! विनय है कुँवर को अवकाश कृपया दीजिये ;
हूँ नृप-सचिव मैं, साथ मेरे कुँवर को अब कीजिये ॥

(४०)

बस कुछ न कहिये अधिक, लेकर भोज को रथ में तथा,
आकर विजन वन में बताना खड्ग से उनको कथा।
लाकर मुझे फिर दीजिये सिर शीघ्र ही युवराज का;
यों पथ अकंटक कीजिये अपना तथा मम राज का॥

(४१)

सुनकर नृपति के वचन मंत्री स्तब्ध से बस हो गये,
सब कुछ अचानक बुद्धि, बोध, विवेक उनके खो गये।
विस्मित बदन आमात्य का वह देखकर नृप ने कहा;
बस समझ लो, जो कुछ कहा मैंने, सही होकर रहा॥

(४२)

हो कर कुपित बोले इसी में सर्वथा कल्याण है,
यदि यह टला आदेश तो जाता तुम्हारा प्राण है।
अब कुछ न किन्तु-परन्तु इसमें अस्ति-नास्ति नहीं कहीं;
केवल यहाँ हाँ है, समझ लो बस यही कि नहीं नहीं॥

(४३)

यों सुन एपाज्ञा सचिव उनकी देख मुख-मुद्रा तथा,
फिर सोंचकर उनका स्वभाव, प्रभाव, स्वस्थिति सर्वथा ।
कहकर "यथाज्ञा; नृप ! तथास्तु" गुणज्ञ मंत्री चल दिये ;
चिंतित हुए किस भांति कुत्सित प्रश्न जायें हल किये ॥

(४४)

यद्यपि बहुत सोचा तथापि उपाय सूझ पड़ा नहीं,
केवल यही सूझा कि नृप-उर सा पदार्थ कड़ा नहीं ।
है बस यही पथ एक मेरे हेतु जो आज्ञा, करूं ;
हूँ नृपति-सेवक दीन, तब क्यों चित्त में चिंता धरूँ ॥

(४५)

बस इस प्रकार विचार, हो तैय्यार रथ लेकर चला,
था यह मनाता जा रहा, भगवान ! तुम करना भला ।
यों चल रहे थे भाव मन में, रथ उधर था चल रहा ;
अनुचित मुझे करना पड़ा, इस सोंच से उर जल रहा ॥

(४६)

था सचिव रथ के साथ ही, रवि-रथ गगन पर आ रहा,
लोहित क्षितिज को छोड़ अब पीताभ था बिखरा रहा।
दिनकर गगन-पथ का तिहाई पार कर पाये अभी;
लेकर सचिव निज रथ वनाश्रम में पहुँच आये तभी॥

(४७)

सादर उन्होंने निकट जा आचार्य-पद वंदन किया,
जय जयति कह युवराज का भी पुनः अभिनंदन किया।
पाकर शुभाशिष सचिव परितोषित अतिथि-सत्कार से;
बोले कुशल - प्रश्नोपरांत नितान्त शिष्टाचार से॥

(४८)

हे कुलपते! यदि हो तवाज्ञा, तो विनय मैं कुछ करूँ,
निज नृपति-वर का पत्र भी श्रीमान् के सम्मुख धरूँ॥
है यह निवेदन, नृप-सदन में एक ऐसा कार्य है;
सब विधि उपस्थिति कुँवर की उसमें बड़ी अनिवार्य है॥

(४६)

यों सुन प्रधानाचार्य ने नृप-पत्र पढ़कर यों कहा,
यदि नृप-सदन में कार्य कुछ अनिवार्य ऐसा ही रहा।
है यदि उपस्थिति कुँवर की अनिवार्य उसमें सर्वथा ;
तो कुँवर को ले जाइये, पर हो न कुछ उनको व्यथा ॥

(५०)

यों फिर कहा गुरु ने कुँवर से, वत्स। भूपादेश है,
तुम सचिव-वर के साथ जाओ, कार्य एक विशेष है।
मंगल करें श्री मंगलायण सर्वथा अनुकूल हों ;
हों यदि कहं कुछ शूल तो तुमको वही मृदु फूल हों ॥

(५१)

यों कह गुरु ने कुँवर-वर के हाथ फेरा माथ पर,
मंत्राभिमंत्रित जल कराया पान उनको हाथ धर।
फिर सचिव-वर के साथ रथ पर शीघ्र जाने को कहा ;
कह कर दिये फल-फूल संवल-रूप में जो कुछ रहा ॥

(५२)

लेकर विदा, छू चरण गुरु के साथ ले युवराज को,
रथ पर चले आमात्य-वर कर जोड़ विप्र-समाज को।
उस शुचि सरोवर तक कँवर के मित्र आ कर नेम से;
'सकुशल सखे फिर! लौट आओ, यों गये कह प्रेम से॥

(५३)

ज्यों रथो चला त्यों ही शुभाशुभ शकुन भी होने लगे,
संमुख सवत्सा धेनु, जम्बुक, काट पथ रोने लगे।
पथ पर गरुड़ाहत, भुजग, हरिणावली दाँये भगी;
शुभ चाख चारा ले रहा, बायें सुतरु श्यामा खगी॥

(५४)

थे सब शुभाशुभ देखते ये कुँवर पथ पर बढ़ रहे,
चिंतित हृदय में मंत्र मंगल, स्वस्तिकारक पढ़ रहे।
पथ पर त्वरित बढ़ता हुआ रथ निविड़ वन में आ गया;
फिर सचिव के आदेश से वह बस वहीं रोका गया॥

(५५)

इस पर कहा युवराज ने आमात्य ! क्यों क्या, बात है,
इस विजन वन में रथ रुकाया क्यों, न होता ज्ञात है।
उस समय मंत्री का कलेजा धकधकाता था बड़ा ;
यद्यपि रहा असमर्थ बोला तदपि करके उर कड़ा ॥

(५६)

हे परम प्रिय युवराज ! मैं हत भाग्य हूँ, अति नीच हूँ,
पामर पतित हूँ त्याज्य, निंद्य नितांत भव का कीच हूँ।
हे कँवर-वर ! तुम जानते हो, मैं अकिंचन दास हूँ ;
यदि सच कहूँ तो मैं नृपति के स्वान का अनुदास हूँ ॥

(५७)

कुछ कह नहीं सकता, कहूँ तो क्या कहूँ, कैसे कहूँ,
सेवक तुम्हारा भी भला, क्यों पूछने पर चुप रहूँ।
था नृपति का आदेश, जिससे इस तरह आया यहाँ ;
हे कुँवर ! इस असि पर चढ़ाने को तुम्हें लाया यहाँ ॥

(५८)

यों सचिव ने रुक रंच फिर कर वज्र निज उर को कहा ,
मैं कह चुका जो कुछ मुझे आदेश नृप का था रहा ।
जो कुछ कहें अब आप, वह भी मान्य है मुझको तथा ;
मैं कह चुका हूँ-आप का भी दास हूँ मैं सर्वथा ॥

(५६)

सुनकर सचिव की बात सब युवराज ने उत्तर दिया ,
किंचित न कुछ भी हर्ष और विषाद निज मन में किया ।
हे सचिव-वर ! सब ठीक है, यों विकल होना व्यर्थ है ;
जो कुछ तुम्हें कर्त्तव्य है उसमें विचार निरर्थ है ॥

(६०)

है उचित तुमको यह कि भूपादेश का पालन करो,
हो कर न च्युत कर्त्तव्य से चरितार्थ निज जीवन करो ।
चिंतित न हो मेरे लिये, इस मोह में न पड़ो वृथा ;
है कुछ व्यथा न मुझे, तथा हूँ मुदित, यह सच सर्वथा ।

(६१)

है अमर आत्मा और नश्वर तत्त्व-जनन्य शरीर है,
यों समझ, किंचित मृत्यु से होता अधीर न धीर है।
है यह अतीव प्रसन्नता का विषय फिर मेरे लिये ;
क्यों तब वृथा ही सोंचते समुचित न यह तेरे लिये ॥

(६२)

उद्यत यहाँ लो मैं खड़ा हूँ खड्ग के हित आप के,
सब सच समझना, भाव कुछ मन में न हैं संताप के।
है यह जगत, जंजाल इसमें तो न कुछ सन्देह है ;
उत्तम यही यदि मंजु चाचा हेतु जाती देह है ॥

(६३)

यदि मम शरीरात्यय उन्हें अमरत्त्व दे देगा भला,
यदि इस तरह उनके लिये होगी चला यह निश्चला।
तो सचिव-वर सच जानना, मैं सर्वथैव कृतार्थ हूँ ;
हो यदि बुभुक्षा शान्त उनकी भोज तो मैं सार्थ हूँ ॥

(६४)

बस बस ! करो कर्त्तव्य अपना व्यर्थ देर करो नहीं,
हे सचिव-वर ! क्यों काँपते हो, व्यर्थ वीर डरो नहीं।
सुन कर कुँवर के वचन यह, आमात्य ने फिर यों कहा ;
बस बस, हृदय में एक ही यह प्रश्न अब मेरे रहा ॥

(६५)

पालन करूँ कर्त्तव्य निज, पर एक बात विशेष है,
क्या कुछ नृपति से आपको अब और कहना शेष है।
यह सुन कुँवर ने फिर कहा, उनके लिये हम क्या कहें ;
केवल कहें यह ही कि चाचा मुंज नित्य सुखी रहें ॥

(६६)

यों सुन सचिव ने विनय की, युवराज कुछ लिख दीजिये,
जाकर जिसे मैं दे सकूँ नृप को वही लिख दीजिये।
सुन कर कुँवर ने काट अँगुली खड्ग से निज रक्त ले ;
अंकित किया सुश्लोक तृण से वृक्ष-पत्र सशक्त ले ॥

(६७)

हैं सत्य-युग-भूषण महीपति मानधाता हो गये,
श्री राम सागर-सेतुकारी रावणारी खो गये।
द्वापर-प्रदीप युधिष्ठिरादि हुये प्रशस्त प्रताप के.;
कुछ साथ उनके भू गई नहिं, जायगी अब आप के ॥

(६८)

पढ़कर इसे आमात्य का उर भावना से भर गया,
यह सरल सच्चा भाव पूर्ण प्रभाव उन पर कर गया।
वह कुँवर के पद-पद्म पर रख शीश फिर रोने लगे;
अविरल बहाकर आँसुओं की धार पद धोने लगे॥

(६९)

सत्वर उठाकर कुँवर ने सस्नेह समझाकर कहा,
होकर सभी विधि वृद्ध यह क्या कर रहे अनुचित महा।
तब सचिव ने कर जोड़ कर सादर कहा अति धीर हो;
हे कुँवर! तुम हो देवता रखते मनुष्य शरीर हो॥

(७०)

मुझ पर कृपाकर हे उदार दयालु ! अपना जानकर।
हे प्रिय कुँवर-वर ! कह रहे ज्यों, बस मुझे त्यों मानकर।
अब कुछ न कहिये और केवल जो कहूँ वह कीजिये ,
अब तक हुई भव-भुक्ति मुझ को मुक्ति भव से दीजिये ॥

(७१)

यदि यह न रुचता हो तुम्हें तो यह कृपा अब कीजिये ,
वन-गमन का आदेश मुझको अब यहाँ से दीजिये।
पातक बहुत मैंने किया, अब एक प्रायश्चित्त है ,
अब मुख न दिखलाऊँ किसी को कह रहा यह चित्त है ॥

(७२)

सुनकर सचिव के वचन लज्जा-ग्लानि-पश्चाताप से,
व्याकुल उन्हें अति देख अपने पाप के सन्ताप से।
सहृदय कुँवर ने यों कहा ! आमात्य थोड़ा शान्त हो ,
बस वह करो, जो कुछ उचित सोचे, सुचित निर्भ्रान्त हो ॥

(७३)

होकर सचिव तब शान्त बोले नम्र हो युवराज से,
चल कर रहें बस गुप्त होकर आप अब नर-राज से।
जो कुछ मुझे करणीय है वह आप मुझ पर छोड़िये ;
यह प्रणय-बंधन जोड़कर आगे इसे मत तोड़िये ॥

(७४)

यों कह सचिव युवराज को रथ पर बिठा कर ले चले,
निज सदन में पहुँचे निशा में छिप-छिपाकर वे भले।
फिर कुँवर को रख कर सुरक्षित एक गुप्तावास में ;
सत्वर गये लग कुँवर-रक्षा के प्रशस्त प्रयास में ॥

(७५)

तत्क्षण बुलाया एक सिद्ध प्रसिद्ध कारीगर वहाँ,
कृत्रिम कुँवर का शीश बनवाया उसे रखकर वहाँ।
लेकर उसे कर रक्त-रंजित, खड्ग भी लोहित लिये ;
जाकर कहा 'जय जयति' नृप ! निश्चित चिंतित चित किये ॥

(७६)

था समय आधी रात का, थी शून्यता संसार में,
चिंतित प्रतीक्षा में पड़े थे मुंज शायनागार में।
आकर वहीं रख मंजु मंजूषा सचिव ने यों कहा;
सेवक उसे कर आ गया आदेश जो प्रभु का रहा॥

(७७)

सुनकर मुदित हो चकित यों नर-पाल बोले चाव से,
हो तुम परम प्रिय सचिव मेरे कह रहा सद्भाव से।
हाँ, प्रथम आद्योपान्त कह दो सब व्यवस्था की कथा;
यह सब कहाँ, कैसे किया, क्या क्या हुई, किसको व्यथा॥

(७८)

कह कर सचिव ने कह सुनाई कारुणिक कल्पित कथा,
फिर यह कहा युवराज को कुछ भी हुई न मनोव्यथा।
ले असि, करांगुलि काट, लोहू ले, लिखा यह पत्र है;
यों फिर कहा निर्दोष नृप हैं विधि-विधान विचित्र है॥

(७६)

हे सचिव ! यह रखना रहस्य सदैव संगोपित तथा,
कलुषित कदापि न मुंज चाचा की कहीं हों यश-कथा।
फिर जब कहा मैंने कि जो कुछ और कहना हो जिसे;
दो कह कहा, तब यों उन्होंने और क्या कहना किसे॥

(८०)

राजन्! कहूँ क्या, कुँवर का अंतिम कथन बस राम था,
अंतिम समय में चंद्रमुख उनका दुचंद ललाम था।
बस बस रहो, कह मुंज ने वह पत्र रक्तांकित लिया;
पढ़कर करावृत मुख किया, उच्छ्वास ले हा! हा! किया॥

(८१)

चित्रित किया सब दृश्य उनकी कल्पना ने सामने,
तब तक सचिव ने कुँवर-कृत्रिम शीस रक्खा सामने।
व्याकुल नृपति की दृष्टि ज्योंही शीश पर आकर पड़ी;
होकर विमूर्छित गिर पड़े नृप भूमि पर उस ही घड़ी॥

(८२)

होकर मुदित सोचा सचिव ने ठीक भावावेश है,
इस समय शुद्धान्तःकरण के वश नितान्त नरेश है।
सत्वर उचित उपचार कर उसने सचेत उसे किया;
होकर सचेत नरेश ने उर पीट, फिर मुँह ढक लिया॥

(८३)

यों फिर कहा मुझसे हुआ हा! हा! महान अनर्थ है,
जीवन जगत में, हाय! मुझ से पातकी का व्यर्थ है।
बस अब कहूँ क्या हाय! इसमें एक मेरा दोष है।
हे सचिव! तुमने बहुत रोका, व्यर्थ तुम पर रोष है॥

(८४)

हे सचिव! तुम हो धन्य, प्रभु की भक्ति दिखलाई बड़ी,
पालन किया आदेश करके वज्र सी छाती कड़ी।
बस अब उसी विधि अन्तिमाज्ञा और यह मेरी करो;
अर्पित करो असि को मुझे भी शीघ्र, मत देरी करो॥

(८५)

सुनकर सचिव बोले कि राजन् सोच लो सब शान्त हो,
है उचित, वह आदेश मुझको आप दें निर्भ्रान्त हो।
जीवन अभीष्ट न आपको अब और, ऐसी ग्लानि है ;
तो विपिन में हरि-भजन करने में न कोई हानि है ॥

(८६)

जो कुछ हुआ वह हुआ, उसका एक प्रायश्चित्त है,
केवल क्षमा-याचन करो उससे कि जो अज निश्च है ।
सुनकर नृपति बोले कि मैं तैय्यार हूँ, पर क्या करूँ ;
थाती कुँवर की यह कहो किसके कहाँ आगे धरूँ ॥

(८७)

यदि यह किसी विधि हो सके तो सचिव मैं सन्नद्ध हूँ,
प्रिय कुँवर के हित प्राण देने के लिये कटिबद्ध हूँ ।
इस पर सचिव ने यों कहा नृप ! सत्य जो यह भाव है ;
तो सर्व सम्भव है, असम्भव तो प्रयत्नाभाव है ॥

(८८)

यदि प्रभु कहें, तो यदपि कार्य न दीखता यह साध्य है ,
है जगत में फिर भीं न कुछ जो सर्वथैव असाध्य है ।
सुन कर नृपति बोले कि लो मम लिखित आज्ञा है यही ;
यदि कुँवर जीवित हो पुनः तो जो कहो कर दूँ वही ॥

(८९)

ले लिखित आज्ञा-पत्र, निज को सर्वथा करवा, क्षमा ,
ले वचन जीवन-दान का, सद्भावना नृप में जमा ।
प्रमुदित सचिव ने आ सदन में सब कहा युवराज से ;
लेकर उन्हें जाकर मिलाया महल में महराज से ॥८९॥

(९०)

पाकर कुँवर को दौड़कर नृप ने लिया उर से लगा ,
भावुक हृदय में भाव त्यों वात्सल्य का पावन जगा ।
देकर उन्हें सब राज, कर अभिषेक अति आनन्द से ;
वन-गमन करते समय की यह विनय जगदानन्द से ॥

(६१)

हे प्रभु ! सदैव प्रसन्न रहना आप नृप-वर भोज से ,
संतत प्रफुल्लित यह रहें श्री-सहित सौम्य सरोज से ।
अनुदिन हरे ! संपत्ति संतति-पूर्ण इनका धाम हो ;
नित ललित इनकी कलित यश की कौमुदी अभिराम हो ॥

(६२)

होकर नृपति, श्री भोज शासन राज्य का करने लगे ,
जो कुछ जहाँ पर दोष-दुर्गुण थे उन्हें हरने लगे ।
दिन दिन लगी होने समुन्नत सर्वथा साम्राज्य में ,
संकुलित होती स्वतः सिद्धि-समृद्धि सर्व सुराज्य में ॥

(६३)

सब विधि लगा था एक दिन दरबार भोज नरेश का ,
उस समय आया एक कवि कम्बोज नामक देश का ।
राजन् ! सदैवाभ्युदय हो, सब विधि रहो संतत सुखी ,
निज वरद कर रक्खें तुम्हारे माथ पर बगलामुखी ॥

(६४)

यों फिर कहा श्रीमन् सुयश ज्यों बढ़ रहा है आप का ,
धवलित जगत करता हुआ, वह हेतु है मम ताप का ।
है बस यही चिन्ता मचाती मम हृदय में खलबली ,
धवलित न मेरी प्रियतमा की जाय हो अलकावली ॥

(६५)

हो कर प्रसन्न नरेश ने दे हार निज उपहार में ,
प्रति वर्ण पर भी लक्ष मुद्रा वार दीं सत्कार में ।
यों कर उसे सत्कृत कही नृप ने विनय-वाणी भली ,
क्या रम सकोगे केतकी के कुंज में कुछ ऐ अली ॥

(६६)

सुन कर नृपति की सूक्ति कवि ने मुसकुराकर यों कहा ,
जाऊँ कहाँ अब भोज ! छोड़ सरोज यह मंजुल महा ।
यों सुन नृपति बोले सचिव से देखिये यह कीजिये ,
नृप-कुल-कमल के मधुप को आवास उत्तम दीजिये ॥

(९७)

यों सुन सचिव बोले नृपाज्ञा शीघ्र होगी सर्वथा,
राजन्! इन्हें होने न पायेगी कहीं कुछ भी व्यथा।
सुन्दर नगर देखा सभी, ली देख खूब गली-गली,
देखा न ऐसा सद्म जिसमें हो न पंडित-मंडली॥

(९८)

केवल कुविंद-निकेत एक निदान ऐसा पा सके,
सुन्दर सुखद था जो कि कवि को सर्वथैव बसा सके॥
यों कह कि यह सुन्दर निकेतन एक कवि को चाहिये,
इससे कुविंद! तुम्हें इसे अब रिक्त करना चाहिये॥

(९९)

यों सुन कुविन्द विनम्र हो कहने लगा सुन लीजिये,
हूँ यदि अशिक्षित तो मुझे घर से प्रथक कर दीजिये।
यद्यपि कहा उसने बहुत फिर भी चरों ने यों कहा,
शिक्षित तुझे माना, तदपि कवि की महत्ता है महा॥

(१००)

इस पर कुबिंद नरेश के दरबार में आया वहाँ,
पंडित, कुशल कवि कोविदामंडित नरेश रहे जहाँ।
राजन्! सदैवाभ्युदय हो, है कुछ विनय, सुन लीजिये,
जो फिर उचित-उपयुक्त हो, आदेश वह प्रभु दीजिये ॥ १०५ ॥

(१०१)

यद्यपि बनाता काव्य मैं, सुन्दर बना पाता नहीं,
सुन्दर बना लेता सरस यदि यत्न कर रचता कहीं।
नृप-कुल-कमल-रवि, भोज, भूपति-भाल-भूषण भूपते!,
हे सुरभि-सद्म, पराग-पूरित प्रेम-पद्म! महामते! ॥

(१०२)

सुनकर-कुविंद-कथा तथा उसकी मनोज्ञ पदावली,
सुनकर समास-चमत्कृता समलंकृता वाक्यावली।
प्रमुदित कहा नृप ने, कि देखो ऐ, कुविन्द दुखी न हो,
अब कुछ न कोई भी कहेगा, निज निकेतन में रहो ॥

(१०३)

यों फिर कहा कवि को आतिथ्यावास में रख लीजिये,
हे सचिव! उनके हेतु रम्यावास बनवा दीजिये।
जय! जयति बोले सब, नृपति नित शारदा वरदा रहे,
सुन्दर फला-फूला सुयश-मंजुल 'रसाल' सदा रहे ॥

राम-जनम तिथि चैत की, सुन्दर मंगलवार।
चख, नभ द्वै, ऋषि, विक्रमी, रच्यो 'रसाल' विचार।

काग़ज़ का आकार—व्हाइट प्रिंटिंग
,, ,, वज़न—२४ पौंड
,, ,, नाप—२० × ३०
मूल्य १)

मुद्रक—शिवनन्दन शर्मा, हिन्दी प्रेस, प्रयाग